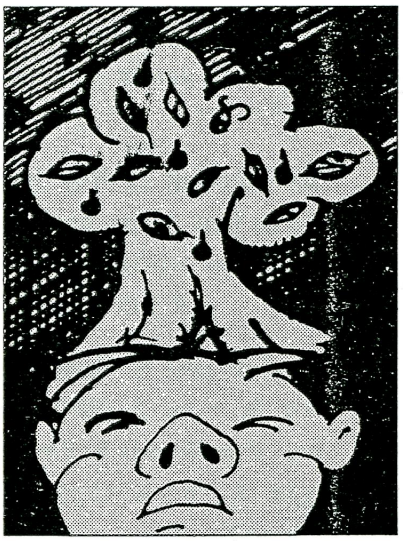

तारों को छू लेने की हसरत

जयंत विष्णु नार्लीकर

उच्च, तकनीकी एवं व्यवसायिक शिक्षण के क्षेत्र में उभरते भूमंडलीकरण के मद्देनज़र ठोस विकल्प एवं वैकल्पिक समझ पर आज व्यापक चर्चा हो रही हैं। भारतीय शिक्षण संस्थानों के लिए यह समय आत्मावलोकन का है। उनके सामने अनेक चुनौतियाँ हैं। उन्हें अपने पैरों पर खड़ा रहना सीखना है, अपने द्वारा अर्जित संसाधनों पर निर्भरता बनानी है, उद्योग व बाज़ार से सघन रिश्ता बनाना है और अपने उद्देश्यों को व्यापकता प्रदान करनी है। एक ओर उन्हें पूर्ण स्वायत्तता हासिल करने की चुनौती है और वहीं दूसरी ओर व्यावसायिक मानदण्डों पर भी खरा उतरना है। इन संस्थानों में समुचित विकास एवं उच्चतर गुणवत्ता प्राप्ति के लिए एक महत्वपूर्ण पूर्व शर्त यह भी है कि शोध एवं अनुसंधान को शिक्षण का अनिवार्य अंग बनाया जाए। यह सिर्फ शिक्षण के स्तर में उन्नयन के लिए ही आवश्यक नहीं बल्कि ज्ञान के क्षेत्र में नये अनुशासनों और तकनीकों के विकास के लिए भी आज अपरिहार्य है। प्रस्तुत है प्रख्यात वैज्ञानिक जयंत विष्णु नार्लीकर का विचार जो हाल ही में टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित उनके एक लेख का अनुवाद है। नार्लीकर आधुनिक भारतीय वैज्ञानिक समाज के उस वर्ग के अग्रणी हैं जो विज्ञान को सामाजिक परिवर्त्तन का उपकरण मानते हैं और उसकी सार्थकता भी इसी से मापते हैं, साथ ही उसे जटिलताओं से स्वतंत्र कर सरल रूप देते हैं — खुद की समझ के लिए भी और आमलोगों में उसे लोकप्रिय बनाने के दृष्टिकोण से भी।

कुछ महीने पहले वित्त मंत्री ने बंगलूर के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस के लिए 100 करोड़ रुपये अनुदान की घोषणा की ताकि उसे ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज जैसा बनाया जा सके। क्या हमारे देश में मुट्ठी भर रुपयों के बदौलत ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज जैसे उच्चतर शिक्षा के संस्थान बन पाएगें? अगर भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड को एक भारी-भरकम राशि इस अपेक्षा में दी जाये कि इससे वे 1948 वाली ब्रेडमेन की ऑस्ट्रेलियन टीम खड़ी कर दें तो क्या यह सम्भव है? या साहित्य अकादमी को कहा जाये कि वे अमुक राशि से साहित्य के क्षेत्र में दूसरा नोबल पुरस्कार हासिल करने लायक कोई हस्ती पैदा करे।

ऑक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज का स्तर प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि हम ऐसे मानस बनाएं, और फिर ऐसे नियम लागू करें जिनके अंतर्गत शिक्षण एवं अनुसंधान साथ-साथ चलते हों और जहाँ योग्यता के प्रश्न पर कोई समझौता किसी भी हाल में न किया जाता हो, चाहे वह फैकल्टी का मामला हो या छात्रों का।

कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड की हैसियत तक पहुँचने के लिए हमें उनसे एक-दो बातें सीखनी होंगी। एक रोचक घटना पर गौर फरमायें — 19वीं शताब्दी के मध्य में दो तेजतर्रार छात्र — पार्किंसन और थॉमसन कैम्ब्रिज के ट्राइपोस परीक्षा में बैठे। जब परिणाम आया तो पार्किंसन को पहला और थॉमसन को दूसरा स्थान मिला था। हालांकि दोनों ही अन्य सभी परीक्षार्थियों से काफी ऊपर थे। दरअसल सिर्फ इन्होंने ही एक बेहद कठिन सवाल का जवाब दिया था और परीक्षक हैरत में पड़ गये जब उन्होंने यह देखा कि उन दोनों ने एक ही तरीके से सवाल का हल निकाला है। यह कैसे संभव हुआ, क्या एक ने दूसरे की नकल की?

यह जानने के लिए पहले पार्किंसन को बुलाया गया और पुछताछ की गयी। उसने बताया कि उसकी यह आदत रही है कि सामान्य पाठ्यक्रम के अतिरिक्त भी वह शोध पत्र-पत्रिकायें पढ़ता रहता है और इसी क्रम में उसने एक गुमनाम लेखक के शोध-पत्र में यह प्रश्न एवं उसके हल देखे थे। परीक्षक, जिसने खुद इसी स्रोत से उस प्रश्न का चयन किया था ने पार्किंसन की तारीफ की और फिर थॉमसन से तहकीक़ात किया। थॉमसन ने स्पष्ट किया कि वह गुमनाम लेखक दरअसल वही था। आगे चलकर वह शख़्स एक ख्यातनाम भौतिकशास्त्री बना और लार्ड केल्विन के नाम से ज्यादा मशहूर हुआ।

कैम्ब्रिज के मेरे ही बैच में स्नातक स्तरीय पाठ्यक्रम के एक छात्र का शोध-पत्र उन दिनों फिजिकल रिव्यू लेटर्स में प्रकाशित हुआ। इसमें उसने आईंस्टीन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत

को सत्यापित करने हेतु ब्रिटेन के एक प्रयोगशाला के प्रयोग में गंभीर त्रुटियों को अंकित किया था। उसे स्नातक छात्र के रूप में ऐसे अनुसंधान के लिए नोबल पुरस्कार मिला। इस शख़्स का नाम है — ब्रायन जोसफ्सन।

ऐसे तेजस्वी छात्रों की सम्भावनाएँ प्राय: बढ़ जाती हैं जब ज्यादातर छात्रों का स्तर उन्नत हो। आखिर कैम्ब्रिज उत्कृष्ट प्रतिभा को क्यों आकर्षित करता है?

अच्छे छात्र आमतौर पर अच्छे शिक्षक एवं उन्नत शोधकर्मियों के कारण ही कहीं आकर्षित होते हैं। मैं भाग्यशाली था कि अपने मैथमेटिकल ट्राइपोस के दौरान मुझे क्वांटम मैकेनिक्स में डिरॉक, इलेक्टोडायनेमिक्स तथा कॉस्मॉलोजी में होएल, फ्लूड डॉयनेमिक्स में बैचलर, नम्बर थ्योरी में डेवेनपो और ज्यूमेट्री में अत्तिया जैसे विद्वानों द्वारा शिक्षण का लाभ मिला। उनलोगों के व्याख्यानों को सुनना, उनसे सीखना जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्रों में महत्वपूर्ण अनुसंधान किये हों, किसी भी छात्र के लिए बहुत उत्साहवर्द्धक हो सकता है। वहाँ वे सभी यूनिवर्सिटी फेकल्टी अपनी प्राथमिक प्रतिबद्धताओं के तहत ही शिक्षण की ज़िम्मेदारी निभाते हैं। इस तर्क पर कि उनमें से कोई किसी ख़ास मुकम्मल अनुसंधान में लिप्त है, शिक्षण की जवाबदेही से मुक्त नहीं हो सकता। यह स्वत: स्पष्ट है कि शैक्षणिक संस्थान का सदस्य शिक्षण कार्य तो करेगा ही।

एक बार कैम्ब्रिज में जब होएल द्वारा प्रस्तावित सैद्धांतिक खगोलशास्त्र (थिओरेटिकल एस्ट्रोनॉमी) के लिए एक नयी संस्था की स्थापना पर विचार-विमर्श हो रहा था तो वहाँ के तत्कालिक फेकल्टी के एक गुट ने यह शर्त्त थोपने की कोशिश की कि शोधकर्मियों को ट्राइपोस स्तरीय शिक्षण कार्य से मुक्त रखा जाएगा। होएल बहुत नाराज़ हुए। उनका मानना था कि शिक्षण-कार्य अनुसंधान का पूरक होता है और यदि हम स्नातक स्तरीय कक्षाओं में पठन-पाठन का काम नहीं करते तो अच्छे छात्र अनुसंधान के प्रति आकर्षित भी नहीं होंगे। ज़ाहिर है कि आज हम ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज जैसे संस्थानों से ढेरों पीछे क्यों हैं। हमारे यहाँ शैक्षणिक-सह-अनुसंधान प्रणाली के दो अलग-अलग अंग हैं — विश्वविद्यालय (शिक्षण के लिए) एवं शोध-संस्थान (अनुसंधान के लिए)। ये दो अलग व्यवस्थायें हैं, पृथक उद्देश्यों के साथ। विश्वविद्यालयों में शिक्षक शिक्षण के बोझ तले बेहिसाब दबे हैं तो अनुसंधान केन्द्रों में शोधकर्मी अपनी-अपनी



दुनिया में विचरते हैं। यदि आप राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के सदस्यों की सूची पर गौर फरमायें तो हालात का तुरंत पता लग जायेगा। इसमें विश्वविद्यालय के सदस्य बहुत ही कम मिलेंगे क्योंकि अकादमी में सदस्यता का मापदंड अनुसंधान है।

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं एवं शोध-संस्थानों में अनुसंधान की सुविधायें तो बहुत अच्छी हैं लेकिन वहाँ स्नातकपूर्व छात्रों की बात तो दूर स्नातकोत्तर छात्र भी नहीं दिखते। विश्वविद्यालयों में शोध वैज्ञानिक एक ठेठ अन्दाज में यही सोचता है कि वह अपनी पूरी क्षमता अनुसंधान में ही केन्द्रित करेगा क्योंकि छात्रों को पढ़ाना उसके काम में अड़ंगा डालता है और अनुसंधान से उसका ध्यान भंग करता है। यदि आप इन संस्थानों के स्नातक शाखा के संगठनकर्त्ताओं से बातें करें तो वे आपको बताएगें कि उन्हें एक छोटे 15 लेक्चर के कोर्स के लिए भी शोधकर्मियों को राजी कराने में कितनी मुशक्कत करनी पड़ती है।

भारत लौटने पर मैंने इस रवैये का विरोध किया। कैम्ब्रिज के अपने अनुभवों के कारण मैं इस प्रवृत्ति को बर्दाश्त नहीं कर सकता था। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को यह चाहिए था कि इन संस्थानों को मान्यता देने के पूर्व शर्त्तों में ऐसी सख़्ती बरती जाती कि शिक्षण और शोध एवं अनुसंधान को एक-दूसरे के पूरक बनाये जायें।

हमारे स्नातक स्तरीय छात्र-छात्रायें दो अलग-अलग खंभों के बीच झूल रहे हैं — एक वैसे अध्यापक जो शिक्षण-कार्य नहीं करते और दूसरी ओर वे अध्यापक जो कोई शोध एवं अनुसंधान नहीं करते। हम उन उत्साही छात्रों को खो बैठते हैं जो शोध कार्यों के प्रति आर्कषित हो सकते थे। एक वैज्ञानिक के रूप में मेरे अनुभव दूसरे तमाम विषयों तक फैले हुए हैं। ऐसे में हम इतिहास, साहित्य और अन्य समाज विज्ञान के क्षेत्र में श्रेष्ठ प्रतिभाओं को घोर अन्धेरे में तलाशते हुए हताश होते रहे हैं।

ऑक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज का स्तर प्राप्त करने के लिए यह ज़रूरी है कि हम ऐसे मानस बनायें, और फिर ऐसे नियम लागू करें जिनके अंतर्गत शिक्षण एवं अनुसंधान साथ-साथ चलते हों और जहाँ योग्यता के प्रश्न पर कोई समझौता किसी भी हाल में न किया जाता हो, चाहे वह फैकल्टी का मामला हो या छात्रों का। इस लक्ष्य को हासिल करने की ख़ातिर 100 करोड़ रुपये न तो आवश्यक हैं, और न ही पर्याप्त। ❑